Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 14-06-2021, Accepted: 30-06-2021, Published: 15-07-2021
Volume 2, Issue 2, 2021, Page No. 01-04

स्त्री और उसकी मुक्ति का प्रश्न

डॉ. आकांक्षा जैन
प.म.ब. गुजराती वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
द्वापर, हो त्रेता हो या फिर कलयुग हो स्त्री का शोषण हमारे देश में चला आ रहा है, केवल रूप परिवर्तित होता जा रहा है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि खुद से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा है। इसी संघर्ष को सिमोन द बाउअर ने अपनी पुस्तक "द सैकंड सेक्स" में बताया है "स्त्री पैदा नही होती , उसे बना दिया जाता है।" महिला की इस स्थिति के लिए सिर्फ पुरूष ही जिम्मेदार नही है, बल्कि महिला भी उत्तरदायी है, क्योंकि अत्याचार करने से ज्यादा अत्याचार सहने वाला अपनी स्थिति का स्वयं जिम्मेदार होता है। देश की समस्त महिलाओं को उनके अधिकारों, अस्मिता के प्रति सजग बनाने एवं आर्थिक दृष्टि से सबल बनाना स्वावलंबी बनाने की दिशा में प्रयत्न करना ही 'स्त्री–विमर्श' है।

मूल शब्दः अजनबीपन, खोखलापन, छटपटाहट, शलाघनीय, स्त्री–विमर्श।

प्रस्तावना

मानव सभ्यता की विकास यात्रा के समानांतर स्त्री का संघर्ष भी अपनी निरंतरता में आरंभ से ही समाज में विद्यमान रहा है। देशकाल के साथ इस संघर्ष का सिर्फ स्वरूप बदलता रहा है। हमारे देश में हर धर्म ने औरत को ही छोटा माना, किसी ने इसे आदम की पसली से जन्मी बताया, तो किसी ने मोहिनी बनकर असुरों से अमृत घट छीनने वाली कहा। जब औरत रजिया बनी तो सरदारों द्वारा मार दी गई। तस्लीमा बनी तो देश छोड़कर भागने को मजबूर कर दी गई। प्रेम किया तो अनारकली की तरह जिंदा दीवार में चुनवा दी गई। तर्क किया, सवाल किया तो द्रोपदी की तरह भरी सभा में अपमानित की गई। सीता की तरह अग्नि–परीक्षा ली गई। इस शोषण और उसके विरूद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लम्बी एवं करूण कहानी है।

द्वापर, हो त्रेता हो या फिर कलयुग हो स्त्री का शोषण हमारे देश में चला आ रहा है, केवल रूप परिवर्तित होता जा रहा है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि खुद से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा है। इसी संघर्ष को सिमोन द बाउअर ने अपनी पुस्तक "द सैकंड सेक्स" में बताया है "स्त्री पैदा नही होती , उसे बना दिया जाता है।" महिला की इस स्थिति के लिए सिर्फ पुरूष ही जिम्मेदार नही है, बल्कि महिला भी उत्तरदायी है, क्योंकि अत्याचार करने से ज्यादा अत्याचार सहने वाला अपनी स्थिति का स्वयं जिम्मेदार होता है। देश की समस्त महिलाओं को उनके अधिकारों, अस्मिता के प्रति सजग बनाने एवं आर्थिक दृष्टि से सबल बनाना स्वावलंबी बनाने की दिशा में प्रयत्न करना ही 'स्त्री–विमर्श' है। महादेवी वर्मा ने इस स्त्री धारणा का भी खंड़न किया कि स्त्री शारीरिक बल की दृष्टि से पुरूष से कमजोर है। वे कहती है "प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष की समानता करके उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि उक्त धारणा के मूल में कोई तथ्य नहीं था।"

प्रारंभ में नवजागरण की लहर के साथ ही नारी जाति के जागरण का भी शंखनाद हुआ। महिलाओं ने भी साहित्य – सृजन के द्वारा रूढ़ियों परम्पराओं और विकृत मानसिकताओं को तोड़ते हुए यौन–शोषण और निषेधों के खिलाफ युद्ध की गर्जना की। भारतीय समाज में तो स्त्री को हमेशा से एक वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है। रेखा कास्तकर स्त्री– विमर्श के सरोकार पर बात करते हुए कहती है कि "स्त्री– विमर्श के सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ – साथ बदलते सामाजिक संदर्भो में उसकी भूमिका, तलाशे गये रास्तों के कारण जन्में नये प्रश्नों के टकराने के साथ–साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल उसके मनुष्य के रूप में स्वीकारें जाने का प्रश्न है।" इसी स्वीकारोक्ति की तलाश करते हुए प्रभाखेतान ने जब सिमोन द बाउआर की पुस्तक 'द सेकंड सैक्स' का हिन्दी अनुवाद किया तब उन्होंने उसकी भूमिका में लिखा है कि – ''हम भारतीय कई तहों में जीते है यदि हम मन की सलवटों को समझते है,तो जरूर यह स्वीकारेगें कि औरत का मानवीय रूप सहोदरा कही जाने के बाबजूद स्वीकृत नहीं है। लोगों को उससे बहुत उम्मीदें होती हैं, वह अपनी सारी भूमिकाओं को बिना किसी षिकायत के निभाए ..... स्पष्टवादिता उसका गुनाह समझा जाता है।''

साहित्य और साहित्यकार का दृष्टिकोण

कहते कि साहित्य रचनाकार के जीवन जगत की अनुभूतियों और कल्पना के सहज समन्वय का रूपाकार है लेखक को समाज की सभी परिस्थितियाँ प्रभावित करती है, ठीक वैसे ही जैसे एक कारीगर को कच्चामाल प्रभावित करता हैं। परिवेष से ली गयी अनुभूतियाँ ही रचनाकार की संवेदना बनाती है। साहित्य में जीवन के साथ–साथ मानव–मन की तथा चरित्र की व्यापक गहराई दिखाई पड़ती है। समाज में व्याप्त विचारों का प्रभाव साहित्य में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य की प्रत्येक विधा स्त्री जीवन के सभी संघर्षो को स्वर प्रदान करती है। नारी का संघर्ष पुरूषों से बराबरी करने या उनसे आगे निकल जाने का नहीं बल्कि उसका संघर्ष समाज में, परिवार में स्वयं को स्थापित करने तथा अपनी अस्मिता की तलाष के लिए है।

डॉ. सुरेषचंद्रगुप्त लिखते है–''अस्मिता को परिभाषित कठिन है फिर भी 'मैं हूँ' से लेकर 'मैं किस लिए हूँ' तक की अंतयात्रा कई पड़ावों से होकर अंततः अस्मिता के गंतव्य पर पहुँचकर ही पूरी होती है।'' बेहतर समाज की स्थापना हेतु जो मुक्ति संघर्ष की प्रणलियाँ इतिहास में रूपायित हुई है, उनमें एक है '' नारी चिंतन ''। इस चिंतन धारा के

केन्द्र में भी अस्मिता की तलाष का ही प्रष्न रहा है। स्त्री–विमर्ष स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजाने पहलुओं, पीड़ा– जगत के उद्घाटन के अनुसार उपलब्ध कराता है। वह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष है। कहा जाता है कि किसी भी सभ्य समाज की संस्कृति, अवस्था और विकास आदि का मूल्यांकन उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के आंकलन द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। ''स्त्री–विमर्श'' या मुक्ति संघर्ष स्त्री को मनुष्य रूप में स्थापित करने का प्रयास है। यह स्त्री की देह के धरातल पर मुक्ति की पक्षधरता के साथ–साथ उसकी सामाजिक,आर्थिक, राजनैतिक समानता की बात करता है। यह मात्र देह का विमर्ष नहीं, बल्कि रूढ़ हो चुकी मान्यताओं ,परंपराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है। डॉ. रस्तोगी का मानना है कि 'साहित्य के विकास में नारी का योग उसके भावनात्मक जगत के अस्तित्व की कहानी है'। मृदुला गर्ग के अनुसार–''फेमिनिज्म सोच की जकड़बंदी से मुक्ति के रूप में लेती है।''

कृष्णा सोबती, चित्रा मुदगल, मंजुल भगत, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त विभिन्न विद्रूपताओं, राजनैतिक–आर्थिक मुददों तथा स्त्री अस्मिता, पारिवारिक घुटन आदि को अपने कथा साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। तमाम दूसरे विषयों के बाबजूद इनके साहित्य में स्त्री मुक्ति का प्रश्न ही केंद्र में है।

यह तभी संभव है जब ये मेहनतकश स्त्रियाँ कलम भी संभालेगी जिसके लिए जरूरी है इनका शिक्षित होना। कहा जाता है कि एक स्त्री जब शिक्षित होती है तो पूरा एक परिवार शिक्षित होता है। अतएव भूमंडलीकरण समाज में सभी धर्म, जाति की लड़कियाँ शिक्षित हो रही है। हमारे पास एक ओर हमारा संविधान है जो स्त्रियों को बराबरी का दर्जा देने की बार–बार घोषणा करता है तथा इधर–उधर कुछ स्त्रियाँ नेताओं के रूप में दिखाई देती है, जबकि दूसरी ओर भारतीय स्त्रियों की भयावह स्थिति दिखाई देती है। घर की चार दीवारी में कैद होकर सुबह से रात तक कमरतोड़ काम करने वाली स्त्रियों को न तो किसी प्रकार की आजादी है और न ही कोई सम्मान दिया जाता है।

यदि भारत में औरत की वर्तमान स्थिति पर गौर किया जाए तो यह मूलतः परजीवी है। हमारे समाज में नारी ही नारी की दुश्मन बनी हुई है। बचपन से ही उसे अपनी माँ से उपेक्षा मिलती है। कई महिलाएँ तो ''कन्या–भ्रूण'' को जन्म ही नहीं देती जिससे स्त्री की औसत जनसंख्या कम हुई है। फलस्वरूप परित्याग, हिंसा, यौन–शोषण व हिंसा, समलैंगिक संबंध, हत्या, आत्महत्या के रूप में परिणाम प्राप्त होते है। इन परिणामों से मुक्त होने के लिए शिक्षा के माध्यम से संपूर्ण समाज की सोच को बदलना होगा। केवल कानून बनाने से कुछ नहीं होगा, जैसे–दहेज विरोधी कानून बने हुए वर्षो हो गए किन्तु यह प्रथा बढ़ती ही जा रही है क्योंकि लोगों की सोच नहीं बदली है।

सुखलिप्सा की दौड़ में हमारे नैतिक मूल्य बुरी तरह कुचले गए। मूल्यहीनता के संकट ने सारी मानवता को डस लिया है। उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से पारिवारिक, सामाजिक संबंधों के खोखलेपन को उजागर किया है। उनके लेखन में संबंधों की अर्थहीनता स्पष्ट है, रिश्तों का अजनबीपन इस अभिव्यक्ति में गहरा रहा है। लेखिकाओं ने रिश्तों के यंत्रीकरण की बात को गहनता से समझा है और व्यक्त भी किया है। कथाकारों की सम्पूर्ण कृतियों का व्यवहारिक अध्ययन करके विभिन्न मनोभावों की कसौटी पर कसा है। अधिकांश कथाकार नारियाँ जागरूक और बुद्धिजीवी है। कुछ ने स्वतंत्रता पूर्व की सिसकती नारी को भी देखा है। कुछ लेखिकाओं ने स्वयं ही पुरूष के षोषण को परखा है।, स्वामित्व के दंष को सहा है। इसलिए वे यह समझ सकती है कि स्वांतत्रयोत्तर भारत में भी नारी, पुरूष के समान स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा न पाने की त्रासदी झेल रही है। ये लेखिकाएँ गहनता से अनुभव करती है कि षिक्षा के प्रसार, संवैधानिक समानाधिकार एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के बाबजूद भी नारी अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ''स्वतंत्र इकाई'' के रूप में, पुरूष प्रधान समाज में स्थापित नहीं कर पा रही है। उसकी पहचान का कोई मूल्य नहीं है। वह अब भी पुरूषाश्रित है। अभी भी वह किसी की माँ, पत्नी, बेटी, बहन के रूप में जानी जाती है, उसका अपना निजी अस्तित्व कुछ भी नहीं।

कथाकारों की रचनाओं में स्त्री–लेखन के अंश

नारी लेखन अपने समकालीन पुरूष लेखन की तुलना में कम नहीं है क्योंकि उसने स्वतंत्र भारत के सही अर्थ को पहचाना है। षोषित नारी के क्रन्दन को सुना है। इसलिए नारी कथाकारों के पात्र अधिक सजीव है इन पात्रों के सृजन में लेखिकाओं की अभिव्यक्ति में ईमानदारी है और उनके अनुभवों में मौलिकता है। नारी ह्रदय का जितना यथार्थ सफल चित्रण नारी लेखिकाओं ने किया है उतना षायद पुरूष लेखक नहीं कर सकें। कुंठित मनः स्थितियों को भी इन कथाकारों ने ईमानदारी से व्यक्त की है। कथाकारों ने यह स्पष्ट किया है कि वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहती है। जहाँ नारी षोषण न हो, धनी व निर्धन की खाईयाँ हो और सम्पूर्ण वैयक्तिक हित हो, ऐसा सामाजिक व पारिवारिक परिवेष रहे जिसमें किसी भी तरह की त्रासदी न उभरे न रहें। स्त्री और पुरूष साहित्य के वर्ग–विभाजन को लेकर ममता कालिया का कहना है ''कहानी को लेकर ये जनाना–मर्दाना वाली बात मुझे पसंद नहीं है। उन्हें खाली मूत्रालय और प्रतीक्षालय तक रखना चाहिए। जनाना मर्दाना वाली साहित्य में बातचीत भी नहीं होती है''

हिन्दी लेखिकाओं ने स्त्री–पीड़ा एवं स्वातन्त्रय चेतना को ''स्वानुभूतिपरक'' अभिव्यक्ति देते हुए मुक्ति की अवधारणा को सार्थक दिषा दी है। नारीवाद की चर्चा में सीमाओं का अतिक्रमण होने लगा। स्त्रियाँ तभी सफल कही जायेगीं जब उनकी पहचान सुरक्षित रहे। यह प्रयास लेखिकाओं में दिखाई देता है। उनकी जो दृष्टि रक्षा क्षेत्र में है, वही संघर्ष जीवन में भी है। इसलिए स्त्री आकांक्षा, सेक्सुअलिटी, अस्मिता या अस्तित्व बोध के प्रकरण उनके लेखन में अधिक प्रखर ढंग में अभिव्यक्त हुए है। स्त्री चेतना या मुक्ति चेतना सभी कथाकारों में प्रखर ढंग से अभिव्यक्त हुए है। सभी हिन्दी लेखिकाओं की स्त्री के जीवन का यथार्थ दिखाई देता है। साथ ही स्त्री–उत्पीड़न, षोषण की त्रासदी क्या होती है? यह स्त्री ही समझ सकती है।

''ब कलम धूमिल, लोहे का स्वाद,
लोहार से नहीं,
घोड़े से पूछो,
जिसके मुँह में लगाम है।''

उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, षिवानी आदि ने नारी–मुक्ति की छटपटाहट को अपने साहित्य में व्यक्त किया है। चित्रा मुद्गल, राजी सेठ और मालती जोषी ने कामकाजी नारी की विभिन्न स्थितियों से साक्षात्कार कराया है। मृदुला गर्ग की रचनाओं में यौन–प्रष्नों कुंठाओं के संदर्भ में नारी की मानसिकता को वास्तविकता की धरातल पर उतारने का प्रयास किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन कथाकारों ने विविध विषयों को समेटा हुआ है।

21 वीं षताब्दी में जहां नारी का स्वरूप बदला और जीवन उसका पुनरूत्थान हुआ। संविधान में स्त्री को समानता का अधिकार और आगे बढ़ने की नई–नई राहें दिखाई। मंजुल भगत के '' अनारो'' में अपने स्वाभिमान के कारण बूझती स्त्री को दर्षाया है। पति के सामने उसका रूतबा बना रहे। उसके लिए वह प्रयत्नषील है और कहती है – ''कर्ज तो यो चुटकियों में उतर जाएगा, पर मान, उसकी कदर बनी रहे , उसके मरद की नजर में।'' वहीं दूसरी तरफ रिष्तों में स्वार्थ आ जाने के कारण उनके अर्थ ही बदल गए है। सुधा श्रीवास्तव ने ''बियावान में उगते त्रिषंकु'' में माँ–बेटी के रिष्तों में परिवर्तन को दिखाया है लेखिका ने पात्र टीना के मन में हो रही छटपटाहट को दिखाया है। ''अम्मा अपने पालन पोषण का बदला चाहती है क्या मुझसे ? मुझे कौनसा

रहना है इस घर में, जब तक हूँ तब तक हूँ। मैं तो अपने सुख को सबसे अधिक महत्व देती हूँ। मुझे त्याग–बलिदान का बिल्ला नहीं चाहिए। नफरत है मुझे इन षब्दों से। त्याग बलिदान के नाम पर अपनी अम्मा को दुखी बनाना सबसे बड़ा पाप है, जो मैं नहीं करूंगी। किसी के लिए भी यह पाप नहीं करूंगी।'' लेखिका गीतांजली जी ने ''माई'' में नारी के अधिकारों के बात की है। समाज मे स्वतंत्र होकर जीना चाहती है। जीवन में किसी का भी बंधन उसे स्वीकार नहीं है। ''ऑख मिचौली '' उपन्यास की नायिका रेणु जीवन में कुछ करना एवं पाना चाहती है। ''जिन्दगी से जो मांगा, वह उसे कभी नहीं मिला, जो मिला उसके लिए कोई निष्चित एक बड़े प्रष्नचिन्ह की तरह आती जाती रही और एक यंत्र चलित मषीन बन गई। पुर्जा–पुर्जा किन्हीं अदृष्य हाथों में संचालित होता है। ''लेखिका ने रेणु की नवीन सोच एवं जीवन में आगे बढ़ने की लालसा को दिखाया है। उषादेवी मित्रा ने ''नीड़'' में नारी के मन की व्यथा को अभिव्यक्त किया है। स्त्री अपनी सभी इच्छाओं का गला घोंट अपने परिवार का निर्वाह करती है ताकि संबंधों में कोई टकराव या बिखराव उत्पन्न न हो। आधुनिक युग में नारी भी अपनी मर्यादा को छोड़कर वातावरण के अनुसार ढल रही है। उपन्यास ''यहाँ विस्तृता बहती है'' में लेखिका ने पात्र के माध्यम से आज की बदलती परिस्थितियों के बारे में कहा है'' अजी आप लोग खैर खबर रखते भी है कुछ एन्थोनी भाई लड़कियों को शह दी है आपने, नहीं तो मजाल था कि वह मुँह उठाकर लड़कों को देख भी लेती ? इधर तो पूरी मर्दमार बनती जा रही है लड़कियाँ। नारी अब किसी भी स्तर पर रोकटोक, रोष उत्पन्न नहीं करना चाहती। पुरूष के साथ –साथ स्त्री भी किसी संकट के सामने घुटने नहीं टेकती चाहे वह सही हो या गलत। मन्नू भंडारी ने ''आपका बंटी'' में स्त्री के दृढ़ निश्चय को दिखाया है। नारी के शिक्षित होने से वह किसी भी कठिन से कठिन समस्या का सामना कर लेती है। ''कठगुलाब'' में पुरूष प्रधान समाज में स्त्री के शोषण तथा स्त्री मुक्ति की कथा है जिसमें चार स्त्रियों की परिस्थिति व पीड़ाये अलग–अलग है और इनको अस्मिता का भाव बोध स्पष्ट है।

कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वे हार नहीं मानती है और संघर्ष करती है। ''ठीकरे से मंगनी'' में मेहरूख कहती है– ''एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है जो उसके बाप और शोहर के घर से अलग उसके मेहनत और पहचान का हो।''

समाज जैसे–जैसे बदल रहा है व्यक्ति की सोच में भी परिवर्तन आता जा रहा है। पहले शादी घर परिवार की रजामंदी से तय की जाती थी। आज षादी बड़ों की मर्जी से ना करके अपनी पसंदानुसार करना चाहते है।

लेखिका षशिप्रभा षास्त्री ने 'क्योंकि' में इस व्यंग्य कसते हुए कहा है ''आपके बच्चे लव मैरेज कर ले तो बात जुदा है, जब तो आपके वष की बात नही है , उस समय भी आप यह जरूर चाहेगी, जहां तक हो मैं सोचती हूं कि भले ही बच्चे कैसी षादी करले पर अगर आपने उसे षादी के लिए अपनी सहमति दे दी है उसे स्वीकार कर लिया है तो आप चाहेगें कि आपके बच्चों की षादी अपने ढंग से हो।''

आज की युवा पीढ़ी अपनी सोच के अनुसार आगे बढना चाहती है। विवाह करने की समस्या का चित्रण है, तो कहीं समय पर विवाह न करने की त्रासदी को लेखिका षिवानी ने ''चौदह फेरे'' में उठाया है। समस्या और स्थिति व्यक्ति को कितना असहाय बना दिया है स्वार्थ और जरूरतों कें कारण व्यक्ति केवल अपना ही हित सोचता है। नासिरा षर्मा की 'षाल्मली' में नायिका जीवन में कुछ करना चाहती है। पति उसे न तो आगे बढ़ने देता है बल्कि बात बात पर अपमान भी करता है। षाल्मली इस पीड़ा से उभरना चाहती है। नायिका पति नरेष के व्यवहार से अत्यंत दुखी है। नरेष के साथ जीवन जीना अभिषाप हो गया है। षाल्मली नरेष के प्रति अपना रोष प्रकट कर रही है। पति–पत्नि एक छत के नीचे रहते हुए भी दूसरे की षक्ल भी नहीं देखना चाहते कारण परिवार और समाज के बंधनों से बंध हुए है। लेखिका कुसुम–अंचल से ''अपनी अपनी यात्रा'' में संबंधों में आए बिखराव की छटपटाहट को सुरेखा के माध्यम दिखाने का प्रयास किया है। 'एक दूसरे को न चाहकर भी एक छत के नीचे रहते थे, क्योंकि बंधन है परिवार का, समाज और विवाह का। माँ–बाप जिससे उनका जी चाहता है अपनी लड़की या लड़के को बांध देते है, कि लो यह तुम्हारा जीवन साथी है। बस पकड़े रहे, सड़ते रहो कि अगर विद्रोह करोगे तो सब कहेंगे चरित्रहीन है बुरी है, निभाना नहीं आता। ''विवाह जैसे संबंधों में दवाब नहीं होना चाहिए। पुरानी जड़ परम्पराओं का विरोध और नए मूल्य को स्थापित कर लेखिका मृदुला गर्ग ने 'मैं और मै'स्पष्ट किया है रिष्ते बन गये है।

संबंधों में दरार आने से उत्पन्न कड़वाहट बढ़ती जा रही है। इसी बदलाव को लेखिका सिम्मी हर्षिता ने ''संबंधों के किनारे'' में दृष्टिगत किया है। विवाह के पहले और बाद के संबधों में परिवर्तन के कारण विरोध की स्थिति को व्यक्त किया है ''विवाह अजीब पहली है उसमें कदम रखते ही आमतौर पर इंसान के लिए पहले के रिश्ते–नाते पिछला स्टेशन बन जाते है। रेलगाड़ी में बैठा इंसान पिछले स्टेशन से ज्यादा अगले स्टेशन के प्रति उत्सुक होता है ..... नये सिरे से वह पुराने संबंधों की जाँच पड़ताल करता है, कुछ की छँटनी करता है, कुछ को स्वीकार करता है ..... कुछ अनावश्यक समझकर अस्वीकार करता है। .....'' समय अनुसार रिश्तों में परिवर्तन आ गया है।

स्त्री अपने द्वारा स्थापित संबंधों का ही मान–सम्मान करती है। स्त्री जीवन में संबंधों के अनुसार अपना जीवन जी सकती है। संबंधों का निरन्तर टूटना व्यक्ति को तोड़ देता है। आधुनिक युग में संबंधों की परिभाषा ही बदल गई है। संबंधों में प्यार, समर्पण की जगह छल–कपट ने ले ली है। संबंधों की रिक्तता बढ़ने से उनका अस्तित्व ही खत्म हो गया है। मंजुल भगत ने ''टूटता हुआ इंद्रधनुष'' में रिश्तों की खट्टास को उजागर किया है। जिसमें संबंधों में दरार आने से अच्छा है, उनका खत्म होना, रिश्तों को घसीटते रहना समझदारी नहीं है। मनुष्य का महत्व उसकी भावनाओं पर टिका हुआ है।

निष्कर्ष

महिला कथाकारों की उपलब्धियां ष्लाघनीय है। आपका बंटी, ठीकरे की मंगनी, आवाँ, कठगुलाब, एक पत्नि के नोट्स, चित्तकोबरा, एक इंच मुस्कान, बेघर, केरजा, पचपन खम्बे, लाल दीवार जैसी रचनाएं हमें लेखिकाओं से उपलब्ध हुई है। स्त्री विमर्ष उत्तर आधुनिकता की धुरी पर खडा एक सषक्त साहित्यिक विमर्ष है। स्त्री–विमर्ष केवल स्त्री की मुक्ति या पुरूष की बराबरी का आख्यान नहीं है। बल्कि अत्यंत गहन अर्थवाला षब्द 'नारी मुक्ति' के साथ–साथ नारी की अस्मिता चेतना व स्वाभिमान को भी अपने में समेट लेता है। इसे ध्यान में रखते हुए हिन्दी की समकालीन महिला कथाकारों ने जीवन के बहुविध पक्ष को लेकर लेखन कार्य किया है। तथापि इसमें संदेह नहीं है कि इसके केन्द्र में नारी ही रही है। नारी जीवन की अतः बोध परिस्थितियों के अनछुए पहलुओं की प्रस्तुति के कारण इनकी कृतियां बहुमूल्य एवं विषिष्ट स्थान रखती है। मृदुला गर्ग के षब्दों में '' नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार यह तय करने का, कि वह क्या करना चाहती है, क्या नहीं ? कोई मुखौटा नहीं कि स्त्रियों पर चस्पा कर दिया जाए। ''

संदर्भ सूची

1. मन्नू भंडारी–आपका बंटी, एक इंच मुस्कान
2. मृदुला गर्ग–चित्तकोबरा, कठगुलाब, मैं और मैं
3. प्रभाखेतान – छिन्नमस्ता, स्त्री उपेक्षिता
4. चित्रामुद्गल–आवाँ

5. कृष्णा सोबती–मित्रों मरजानी
6. नसिरा शर्मा–ठीकरे की मंगनी, शाल्मली
7. मंजुल भगत–टूटा हुआ इंद्रधनुष, अनारो
8. रेखा कास्तकार–स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ
9. डॉ. शीलप्रभा वर्मा–महिला उपन्यासकारों की रचनाओं मे बदलते सामाजिक संदर्भ
10. कुसुम अंचल–अपनी अपनी यात्रा
11. सिम्मी हर्षिता–संबंधों के किनारे
12. सुधा श्रीवास्तव–बियावान में उगते त्रिशंकु
13. गीतांजलि–माई
14. दिनेश नंदिनी डालमिया–आंख मिचौली
15. 15 उषा देवी मित्रा–नीड़
16. महरून्निसा परवेज–अकेला पलाश
17. चन्द्रकांता – यहां विस्तृता बहती है।
18. शशिप्रभा शास्त्री – क्योंकि